वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 365
ISBN-978-93-82071-44-0

कृतिकर्म विधि

–लेखिका –

दो बार डी.लिट्. की मानद उपाधि से अलंकृत
परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव-2012, पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के 61वें त्यागदिवस के अवसर पर घोषित चारित्रवर्धनोत्सव वर्ष 2012-2013 के अवसर पर प्रकाशित

-प्रकाशक-

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org, E-mail : jambudweeptirth@gmail.com
Facebook : jaintirthjambudweep

प्रथम संस्करण	वीर नि. सं. 2539	मूल्य
1100 प्रतियाँ	पौष शु. दशमी, 21 जनवरी 2013	12/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
(पीएच.डी. की मानद उपाधि से अलंकृत)

-: निर्देशक एवं सम्पादक:-

कर्मयोगी पीठाधीश स्वस्तिश्री रवीन्द्रकीर्ति स्वामीजी

-: प्रबंध सम्पादक :-

जीवन प्रकाश जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

कृतिकर्म विधि

श्रीमते वर्धमानाय, नमो नमितविद्विषे।
यज्ज्ञानान्तर्गतं भूत्वा, त्रैलोक्यं गोष्पदायते।।१।।

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करते समय तथा सामायिक आदि करते समय जो हाथ जोड़ना, पंचांग नमस्कार करना आदि क्रियाएँ की जाती हैं, उसका नाम ही कृतिकर्म है। इस कृतिकर्म को विधिवत् करने के लिए यहाँ शास्त्रीय प्रमाण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

जिनेन्द्र भगवान के दर्शन के लिए जिनमंदिर के पास पहुँचकर आगे का श्लोक पढ़ते हुए मंदिर की तीन प्रदक्षिणा देवे। यदि मंदिर की प्रदक्षिणा का साधन नहीं है, तो बाहर ही पैर धोकर-जिनमंदिर में प्रवेश करते समय—

'**ॐ जय जय जय, निःसही निःसही निःसही**' ऐसा बोलकर आगे का श्लोक पढ़ें—

निःसंगोहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येत्य भक्त्या।
स्थित्वा गत्वा निषद्योच्चरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मम्।।
भाले संस्थाप्य बुद्ध्या मम दुरितहरं कीर्तये शक्रवंद्यं।
निंदादूरं सदाप्तं क्षयरहितममुं ज्ञानभानुं जिनेंद्रम्।।१।।

हे भगवन् ! मैं निःसंग हो, जिनगृह की प्रदक्षिणा करके।
भक्ती से प्रभु सन्मुख आकर, करकुड्मल शिर नत करके।।
निंदा रहित दुरितहर अक्षय, इंद्रवंद्य श्री आप्त जिनेश।
सदा करूँ संस्तवन मोहतमहर! तव ज्ञानभानु परमेश।।१।।

पुनः हाथ जोड़कर दर्शनस्तोत्र पढ़ें—

अद्याभवत् सफलता नयनद्वयस्य, देव! त्वदीयचरणाम्बुजवीक्षणेन।
अद्य त्रिलोकतिलक! प्रतिभासते मे, संसारवारिधिरयं चुलुकप्रमाणम्।।५।।

हे भगवन् ! मम नेत्र युगल शुचि, सफल हुए हैं आज अहो।
तव चरणांबुज का दर्शन कर, जन्म सफल है आज अहो।।
हे त्रैलोक्य तिलक जिन! तव, दर्शन से प्रतिभासित होता।
यह संसार वार्धि चुल्लुक, जलसम हो गया अहो ऐसा।।५।।

पुनः श्रावक है तो चावल के पुंज चढ़ाकर भगवान की तीन प्रदक्षिणा देकर 'कृतिकर्म' विधि से चैत्यभक्ति पढ़ें। साधु हैं तो प्रदक्षिणा देकर कृतिकर्म विधि करते हुए 'लघु चैत्यभक्ति' पढ़कर भगवान की स्तुति करें।

यह कृतिकर्म विधि षट्खण्डागम-धवला एवं जयधवला ग्रंथ में तथा मूलाचार, आचारसार, चारित्रसार आदि ग्रंथों में वर्णित है। इस विधि से भगवान का दर्शन व वंदन करने से असंख्यातों गुणा कर्मनिर्जरा होती है और महान पुण्य का संचय होता है। चैत्यभक्ति श्री गौतम स्वामी के द्वारा बनाई हुई है। इसमें से यहाँ मैंने उस भक्ति से सात श्लोक लिए हैं। इन सात श्लोकों में नव देवों की (नवदेवताओं की) वंदना हो जाती हैं। अर्थात् तीनों कालों के अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु की तथा जिनधर्म, जिनागम की व तीनों लोकों के समस्त कृत्रिम-अकृत्रिम जिनप्रतिमाओं की और जिनमंदिरों की वंदना हो जाती है। इसलिए इसे 'लघु चैत्यभक्ति' नाम दिया है। यदि पूरी चैत्यभक्ति पढ़ना है तो 'मुनिचर्या' आदि पुस्तकों से पढ़ें।

इस भक्तिपाठ के लिए जो विधि धवला, जयधवला आदि शास्त्रों में कही गई है। उसको 'कृतिकर्म' या 'क्रियाकर्म' कहते हैं। उसी को यहाँ पहले संक्षेप में बताते हैं—

एक बार के कायोत्सर्ग में—यह आगे लिखी विधि की जाती है उसी का नाम कृतिकर्म है। यह विधि देववन्दना, प्रतिक्रमण आदि सर्व क्रियाओं में भक्तिपाठ के प्रारम्भ में की जाती है। जैसे देववन्दना में चैत्यभक्ति के प्रारम्भ में—

'अथ पौर्वाह्निक-देववन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दनास्तवसमेतं श्रीचैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं'।

यह प्रतिज्ञा हुई, इसको बोलकर भूमि स्पर्शनात्मक पंचांग नमस्कार करें । यह एक अवनति हुई । अनन्तर तीन आवर्त और एक शिरोनति करके 'णमो अरिहंताणं.... चत्तारिमंगलं...अड्ढाइज्जदीव....इत्यादि पाठ बोलते हुए... दुच्चरियं वोस्सरामि' तक पाठ बोले यह 'सामायिक स्तव' कहलाता है। पुनः तीन आवर्त और एक शिरोनति करें। इस तरह 'सामायिक दण्डक' के आदि और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक

शिरोनति होने से छह आवर्त और दो शिरोनति हुईं। पुनः नौ बार णमोकार मन्त्र को सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में जपकर भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करें । इस तरह प्रतिज्ञा के अनन्तर और कायोत्सर्ग के अनन्तर ऐसे दो बार अवनति हो गयीं।

बाद में तीन आवर्त, एक शिरोनति करके 'थोस्सामि स्तव' पढ़कर अन्त में पुनः तीन आवर्त, एक शिरोनति करें। इस तरह चतुर्विंशति स्तव के आदि और अन्त में तीन-तीन आवर्त और एक-एक शिरोनति करने से छह आवर्त और दो शिरोनति हो गयीं । ये सामायिक स्तव सम्बन्धी छह आवर्त, दो शिरोनति तथा चतुर्विंशतिस्तव संबंधी छह आवर्त, दो शिरोनति मिलकर बारह आवर्त और चार शिरोनति हो गयीं।

इस तरह एक कायोत्सर्ग के करने में दो प्रणाम, बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं।

जुड़ी हुई अंजुलि को दाहिनी तरफ से घुमाना सो आवर्त का लक्षण है।

इतनी क्रियारूप कृतिकर्म को करके ''जयतु भगवान्'' इत्यादि चैत्यभक्ति का पाठ पढ़ना चाहिए । ऐसे ही जो भी भक्ति जिस क्रिया में करना होती है तो यही विधि की जाती है।

वन्दना योग्य मुद्रा—मुद्रा के चार भेद हैं—जिनमुद्रा, योगमुद्रा, वन्दना मुद्रा, मुक्ताशुक्तिमुद्रा। इन चारों मुद्राओं का लक्षण क्रम से कहते हैं।

जिनमुद्रा—दोनों पैरों में चार अंगुल प्रमाण अन्तर रखकर और दोनों भुजाओं को नीचे लटकाकर कायोत्सर्गरूप से खड़े होना सो जिनमुद्रा है। **योगमुद्रा**—पद्मासन, पर्यंकासन और वीरासन इन तीनों आसनों की गोद में नाभि के समीप दोनों हाथों की हथेलियों को चित रखने को जिनेन्द्रदेव योगमुद्रा कहते हैं। **वन्दना मुद्रा**—दोनों हाथों को मुकुलितकर और कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े होने से वन्दना मुद्रा होती है। **मुक्ताशुक्तिमुद्रा**—दोनों हाथों की अंगुलियों को मिलाकर और दोनों कुहनियों को उदर पर रखकर खड़े हुए को मुक्ताशुक्तिमुद्रा कहते हैं।

कृतिकर्म प्रयोग विधि/ कायोत्सर्ग विधि

अथ देववन्दनाक्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर साष्टांग या पंचांग नमस्कार करके खड़े होकर मुकुलित हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर सामायिक दण्डक पढ़ें।)

सामायिक दण्डक

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अथ देववन्दना क्रियायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वंदनास्तवसमेतं चैत्यभक्ति कायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

(इस प्रतिज्ञा वाक्य को बोलकर पंचांग नमस्कार करें। पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके सामायिक दंडक पढ़ें।)

—सामायिक दण्डक—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।।

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

अड्ढाइज्जदीवदोसमुद्देसु पण्णारसकम्मभूमिसु जाव अरहंताणं भयवंताणं आदियराणं तित्थयराणं जिणाणं जिणोत्तमाणं केवलियाणं, सिद्धाणं, बुद्धाणं, परिणिव्वुदाणं, अन्तयडाणं, पारयडाणं, धम्माइरियाणं, धम्मदेसियाणं, धम्मणायगाणं, धम्मवरचाउरंगचक्कवट्टीणं, देवाहिदेवाणं, णाणाणं, दंसणाणं, चरित्ताणं सदा करेमि किरियम्मं।

करेमि भंते! सामाइयं सव्वसावज्जजोगं पच्चक्खामि जावज्जीवं तिविहेण मणसा वचसा काएण ण करेमि ण कारेमि कीरंतं पि ण समणुमणामि। तस्स भंते! अइचारं पच्चक्खामि णिंदामि गरहामि अप्पाणं, जाव अरहंताणं, भयवंताणं, पज्जुवासं करेमि ताव कालं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

(पुनः मुकुलित हाथ जोड़े हुए ही तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े जिनमुद्रा से सत्ताइस उच्छ्वास में नव बार णमोकार मंत्र का जाप करें। पुनः पंचांग

ढाई द्वीप अरु दो समुद्र गत, पन्द्रह कर्मभूमियों में।
जो अर्हत भगवंत आदिकर, तीर्थंकर जिन जितने हैं।।१।।

तथा जिनोत्तम केवलज्ञानी, सिद्ध शुद्ध परि निर्वृतदेव।
पूज्य अंतकृत भवपारंगत, धर्माचार्य धर्म देशक।।२।।

धर्म के नायक धर्मश्रेष्ठ, चतुरंग चक्रवर्ती श्रीमान् ।
श्री देवाधिदेव अरु दर्शन, ज्ञान चरित गुण श्रेष्ठ महान।।३।।

करूँ वंदना मैं कृतिकर्म, विधि से ढाई द्वीप के देव।
सिद्ध चैत्य गुरुभक्ति पठन कर, नमूँ सदा बहुभक्ति समेत।।४।।

भगवन् सामायिक करता हूँ, सब सावद्य योग तज कर।
यावज्जीवन वचन काय मन, त्रिकरण से न करूँ दुःखकर।।५।।

नहीं कराऊँ नहिं अनुमोदूँ, हे भगवन् ! अतिचारों को।
त्याग करूँ निंदूँ गर्हूं, अपने को मम आत्मा शुचि हो।।६।।

जब तक भगवत् अर्हद्देव की, करूँ उपासना हे जिनदेव।
तब तक पापकर्म दुश्चारित, का मैं त्याग करूँ स्वयमेव।।७।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके २७ उच्छ्वास में ९ बार महामंत्र जप कर पंचांग नमस्कार करें।)

नमस्कार करके खड़े होकर मुक्ताशुक्ति मुद्रा से हाथ जोड़कर तीन आवर्त एक शिरोनति करके 'थोस्सामिस्तव'' पढ़ें।)

—थोस्सामि स्तव —

थोस्सामि हं जिणवरे तित्थयरे केवली अणंतजिणे।
णरपवरलोयमहिए विहुयरयमले महप्पण्णे।।१।।

लोयस्सुज्जोययरे धम्मं तित्थंकरे जिणे वंदे।
अरहंते कित्तिस्से चउवीसं चेव केवलिणो।।२।।

उसहमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे।।३।।

सुविहिं च पुप्फयंतं सीयल सेयं च वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं भयवं धम्मं संतिं च वन्दामि।।४।।

कुंथुं च जिणवरिंदं अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं।
वंदामि रिट्ठणेमिं तह पासं वड्ढमाणं च ।।५।।

एवं मए अभित्थुआ विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा तित्थयरा मे पसीयंतु।।६।।

थोस्सामि स्तव

स्तवन करूँ जिनवर तीर्थंकर, केवलि अनंत जिन प्रभु का।
मनुज लोक से पूज्य कर्मरज, मल से रहित महात्मन् का।।१।।

लोकोद्योतक धर्म तीर्थंकर, श्री जिन का मैं नमन करूँ।
जिन चउवीस अर्हंत तथा, केवलि गण का गुणगान करूँ।।२।।

ऋषभ, अजित, संभव, अभिनन्दन, सुमतिनाथ का कर वंदन।
पद्मप्रभ जिन श्री सुपार्श्व प्रभु, चन्द्रप्रभ का करूँ नमन।।३।।

सुविधि नामधर पुष्पदंत, शीतल श्रेयांस जिन सदा नमूँ।
वासुपूज्य जिन विमल अनंत, धर्म प्रभु शान्तिनाथ प्रणमूँ।।४।।

जिनवर कुन्थु अरह मल्लि प्रभु, मुनिसुव्रत नमि को ध्याऊँ।
अरिष्ट नेमि प्रभु श्री पारस, वर्धमान पद शिर नाऊँ।।५।।

इस विध संस्तुत विधुत रजोमल, जरा मरण से रहित जिनेश।
चौबीसों तीर्थंकर जिनवर, मुझ पर हों प्रसन्न परमेश।।६।।

कित्तिय वंदिय महिया एदे लोगोत्तमा जिणा सिद्धा।
आरोग्गणाणलाहं दिंतु समाहिं च मे बोहिं।।७।।

चंदेहिं णिम्मलयरा आइच्चेहिं अहियपहा सत्ता।
सायरमिव गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु।।८।।

पुनः तीन आवर्त एक शिरोनति करके खड़े-खड़े ही मुकुलित हाथ जोड़कर वन्दनामुद्रा बनाकर चैत्यभक्ति पढ़ें।)

चैत्यभक्ति (लघु)

अर्हत्सिद्धाचार्यो-पाध्यायेभ्यस्तथा च साधुभ्यः।
सर्वजगद्वंद्येभ्यो, नमोऽस्तु सर्वत्र सर्वेभ्यः।।१।।

मोहादिसर्वदोषारि-घातकेभ्यः सदा हतरजोभ्यः।
विरहितरहस्कृतेभ्यः पूजार्हेभ्यो नमोऽर्हद्भ्यः।।२।।

क्षान्त्यार्जवादिगुणगण-सुसाधनं सकललोकहितहेतुं।
शुभधामनि धातारं, वन्दे धर्मं जिनेन्द्रोक्तम् ।।३।।

मिथ्याज्ञानतमोवृत-लोकैकज्योतिरमितगमयोगि।
सांगोपांगमजेयं, जैनं वचनं सदा वन्दे।।४।।

कीर्तित वंदित महित हुए ये, लोकोत्तम जिन सिद्ध महान् ।
मुझको दें आरोग्यज्ञान अरु, बोधि समाधि सदा गुणखान।।७।।

चन्द्र किरण से भी निर्मलतर, रवि से अधिक प्रभाभास्वर।
सागर सम गंभीर सिद्धगण, मुझको सिद्धी दें सुखकर।।८।।

(तीन आवर्त एक शिरोनति करके चैत्यभक्ति का पाठ करें।)

चैत्यभक्ति (लघु)

अर्हत सिद्धाचार्य उपाध्याय, सर्व साधुगण सुरवंदित।
त्रिभुवन वंदित पंच परम गुरु, नमोऽस्तु तुमको मम संतत।।१।।
मोहारि के घातक द्वयरज, आवरणों से रहित जिनेश।
विघ्न-रहस विरहित पूजा के, योग्य अर्हत को नमूँ हमेश।।२।।
क्षमादि उत्तम गुणगण साधक, सकल लोक हित हेतु महान्।
शुभ शिवधाम धरे ले जाकर, जिनवर धर्म नमूँ सुख खान।।३।।
मिथ्याज्ञान तमोवृत जग में, ज्योतिर्मय अनुपम भास्कर।
अंगपूर्वमय विजयशील, जिनवचन नमूँ मैं शिर नत कर।।४।।

भवनविमानज्योति-र्व्यंतरनरलोकविश्वचैत्यानि।
त्रिजगदभिवन्दितानां, वंदे त्रेधा जिनेन्द्राणां।।५।।

भुवनत्रयेऽपि भुवन-त्रयाधिपाभ्यर्च्य-तीर्थकर्तृणाम्।
वन्दे भवाग्निशान्त्यै, विभवानामालयालीस्ताः।।६।।

इति पंचमहापुरुषाः, प्रणुता जिनधर्म-वचन-चैत्यानि।
चैत्यालयाश्च विमलां, दिशन्तु बोधिं बुधजनेष्टां।।७।।

अनन्तर जिनप्रतिमा के सम्मुख बैठकर नीचे लिखा आलोचना पाठ पढ़ें-

आलोचना या अंचलिका —**इच्छामि भन्ते! चेइयभत्तिकाउस्सग्गो कओ तस्सालोचेउं, अहलोयतिरियलोयउड्ढलोयम्मि किट्टिमा-किट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्वाणि तिसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतरजोइसिय-कप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गन्धेण, दिव्वेण पुप्फेण, दिव्वेण धूवेण, दिव्वेण चुण्णेण, दिव्वेण वासेण, दिव्वेण ण्हाणेण, णिच्चकालं अंचंति,**

भवनवासि व्यन्तर ज्योतिष, वैमानिक में नरलोक में ये।
जिनभवनों की त्रिभुवन वंदित, जिनप्रतिमा को वंदूँ मैं।।५।।
भुवनत्रय में जितने जिनगृह,भवविरहित तीर्थंकर के।
भवाग्नि शांति हेतु नमूँ मैं, त्रिभुवनपति से अर्चित ये।।६।।
इस विध प्रणुत पंचपरमेष्ठी, श्री जिनधर्म जिनागम को।
विमल चैत्य चैत्यालय वंदूँ, बुधजन इष्ट बोधि मम दो।।७।।

अंचलिका (बैठकर पढ़ें)

भगवन् ! चैत्यभक्ति अरु कायोत्सर्ग किया उसमें जो दोष।
उनकी आलोचन करने को, इच्छुक हूँ धर मन सन्तोष।।
अधो मध्य अरु ऊर्ध्वलोक में, अकृत्रिम कृत्रिम जिनचैत्य।
जितने भी हैं त्रिभुवन के, चउविध सुर करें भक्ति से सेव।।१।।
भवनवासि व्यंतर ज्योतिष, वैमानिक सुर परिवार सहित।
दिव्य गंध सुम धूप चूर्ण से, दिव्य न्हवन करते नितप्रति।।
अर्चें पूजें वंदन करते, नमस्कार वे करें सतत।
मैं भी उन्हें यहीं पर अर्चूं, पूजूँ वदूँ नमूँ सतत।।२।।

पुज्जंति, वंदंति, णमंसंति अहमवि इह संतो तत्थ, संताइं णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं, जिणगुण-सम्पत्ति होउ मज्झं।

(अनन्तर पंचांग नमस्कार करें)

दु:खों का क्षय कर्मों का क्षय, होवे बोधि लाभ होवे।
सुगतिगमन हो समाधिमरणं, मम जिनगुण संपति होवे।।३।।

(अनन्तर पंचांग नुस्कार करें)

(कदाचित् खड़े होकर कृतिकर्म नहीं करना हो तो बैठकर ही सारी विधि करेंअन्तर इतना ही है कि बैठकर कृतिकर्म करने में ९ बार महामंत्र का जाप्य योगमुद्रा से करन होता है।)

सामान्यतया यह देवदर्शन की विधि कही है। विशेषरूप से देववन्दना अपर नाम सामायिक विधि में चैत्यभक्ति-पंचगुरुभक्ति एवं समाधिभक्ति पढ़ने का विधान है। यह पूरी विधि मुनिचर्या, क्रियाकलाप और देववन्दना तथा सामायिक नाम की पुस्तक में देखें।

गुरुवन्दना

(श्रावक-श्राविकाओं के लिए)

गुरुभक्त्या वयं सार्ध-द्वीपद्वितयवर्तिनः ।
वन्दामहे त्रिसंख्योन-नवकोटि मुनीश्वरान् ।।

णिच्चकालं अंचेमि, पूजेमि, वंदामि, णमंसामि, दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं।

आचार्य, उपाध्याय और साधुओं की वंदना करते समय 'गुरुवंदना' पढ़कर नमोऽस्तु करें।

आर्यिकाओं को वंदामि तथा ऐलक, क्षुल्लक व क्षुल्लिका को इच्छामि कहकर नमस्कार करें।

यह कृतिकर्म सहित देववंदन विधि जैसा कि आगम में वर्णित है। उनके प्रमाण देखिए—

श्रावकों की विधिवत् अभिषेकपूर्वक देवपूजा में इसी कृतिकर्म विधि सहित चार भक्तियाँ पढ़ी जाती हैं। यह सम्पूर्ण विधि 'जम्बूद्वीप पूजांजलि' पुस्तक में पृष्ठ १७७ से २०६ तक दी गई है। उसमें लिखित विधि से जो पूजा की जाती है, वही श्रावक-श्राविकाओं की सामायिक कहलाती है। जैसा कि भावसंग्रह में कहा है—

''देवपूजां बिना सर्वा दूरा सामायिकी क्रिया।''

तथा मध्यान्ह व अपराण्ह में सामायिक करने में श्रावक दो भक्ति पढ़कर सामायिक करें। इसमें कृतिकर्म विधि-प्रयोगविधि विस्तार से धवला, जयधवला, मूलाचार आदि ग्रंथों के अनुसार पूर्णरूप से है। वह सामायिक विधि भी 'जम्बूद्वीप पूजांजलि' पुस्तक में पृ. ५३० से ५४० तक दी गई है।

कृतिकर्म विधि के प्रमाण

(जैन साधु एवं श्रावकों के लिए)

कषायप्राभृत ग्रंथ में कहा है—

जिण-सिद्धाइरिय-बहुसुदेसु वंदिज्जमाणेसु जं कीरइ कम्मं तं किदियम्मं णाम। तस्स आदाहीण-तिक्खुत्त-पदाहिण-तिओणद-चदुसिर-वारसावत्तादि-लक्खणं विहाणं फलं च किदियम्मं वण्णेदि।[1]

जिनदेव, सिद्ध, आचार्य और उपाध्याय की वन्दना करते समय जो क्रिया की जाती है उसे कृतिकर्म कहते हैं । उस कृतिकर्म के आत्माधीन होकर किए गए तीन बार प्रदक्षिणा, तीन अवनति, चार नमस्कार और बारह आवर्त आदि रूप लक्षण, भेद तथा फल का वर्णन कृतिकर्म प्रकीर्णक करता है।

षट्खण्डागम पुस्तक-१ से प्रमाण—

किदियम्मं अरहंत-सिद्ध-आइरिय-बहुसुद-साहूणं पूजाए विहाणं वण्णेइ[2]**।**

कृतिकर्म नाम का अर्थाधिकार अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु की पूजा आदि की विधि का वर्णन करता है।

षटखण्डागमः पुस्तक-९ से प्रमाण—

किदियम्मं अरहंत-सिद्धाइरिय-उवज्झाय-गणचिंतय-गणवसहाईणं कीरमाण-पूजाविहाणं वण्णेदि । एत्थुववुज्जंती गाहा-

दुओणदं जहाजादं बारसावत्तमेव वा ।
चउसीसं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजए[3]**।।६४।।**

कृतिकर्म अधिकार अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, गणचिन्तक (साधुसंघ के कार्यों की चिन्ता करने वाले) और गणवृषभ (गणधर) आदिकोंकी की जाने वाली पूजा के विधान का वर्णन करता है। यहाँ उपयुक्त गाथा—

---

१. जयधवला (कषायपाहुड़) पृ.११८। २. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक-१, पृ. ९८। ३. षट्खण्डागम (धवला टीका) पुस्तक-९, पृ. १८९।

यथाजात अर्थात् जातरूप के सदृश क्रोधादि विकारों से रहित होकर दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धियों से संयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करना चाहिये ।।६४।।

गोम्मटसार जीवकाण्ड ग्रंथ से प्रमाण—

कृतेः क्रियायाः कर्म विधानं अस्मिन् वर्ण्यते इति कृतिकर्म । तच्च अर्हत्सिद्धाचार्य-बहुश्रुतसाध्वादिनवदेवतावन्दनानिमित्तमात्माधीनताप्रादक्षिण्यत्रिवारत्रिनवतिचतुःशिरोद्वादशावर्तादिलक्षणनित्यनैमित्तिकक्रियाविधानं च वर्णयति।[१]

जिसमें कृति अर्थात् क्रिया का कर्म—विधान कहा जाता हैं, वह क्रियाकर्म है। उसमें अरहन्त, सिद्ध-आचार्य, बहुश्रुत (उपाध्याय), साधु आदि नौ देवताओं की वन्दना के निमित्त आत्माधीनता (अपने अधीन होना) , तीन बार प्रदक्षिणा, तीन बार नमस्कार, चार बार सिर नमाना, बारह आवर्त आदि रूप नित्य-नैमित्तिक क्रिया-विधान का वर्णन होता है।

षट्खण्डागम ग्रंथ में कहा है—

जं तं किरियाकम्मं णाम ।।२७।।

तस्स अत्थविवरणं कस्सामो—

तमादाहीणं पदाहीणं तिक्खुत्तं तियोणदं चदुसिरं बारसावत्तं तं सव्वं किरियाकम्मं णाम ।।२८।

तं किरियाकम्मं छव्विहं आदाहीणादिभेदेण । तत्थ किरियाकम्मे कीरमाणे अप्पा-यत्तत्तं अपरवसत्तं आदाहीणं णाम। पराहीणभावेण किरियाकम्मं किण्ण कीरदे ? ण ; तहा किरियाकम्मं कुणमाणस्स कम्मक्खयाभावादो जिणिंदादिअच्चासणदुवारेण कम्म-च। वंदणकाले गुरुजिणजिणहराणं पदक्खिणं काऊण णमंसणं पदाहीणं णाम। पदाहिणणमंसणादिकिरियाणं तिण्णिवारकरणं तिक्खुत्तं णाम। अधवा एक्कम्हि चेव दिवसे जिणगुरुरिसिवंदणाओ तिण्णिवारं किज्जंति त्ति तिक्खुत्तं णाम। तिसंज्झासु चेव वंदणा कीरदे अण्णत्थ किण्ण कीरदे ? ण; अण्णत्थ वि तप्पडिसेहणियमाभावादो । तिसंज्झासु वंदणणियमपरूवणट्ठं तिक्खुत्तमिदि भणिदं । ओणदं अवनमनं भूमावासनमित्यर्थः। तं च तिण्णिवारं कीरदे त्ति तियोणदमिदि भणिदं । तं जहा-सुद्धमणो धोदपादो जिणिंददंसण-जणिदहरिसेण पुलइदंगो संतो जं जिणस्स अग्गे बइसदि तमेगमोणदं। जमुट्ठिऊण जिणिंदादीणं विण्णत्तिं कादूण बइसणं तं बिदियमोणदं। पुणो उट्ठिय सामाइयदंडएण अप्पसुद्धिं काऊणसकसायदेहुस्सग्गं करिय जिणाणंतगुणे ज्झाइय चउवीसतित्थयराणं वंदणं काऊण

१. गोम्मटसार जीवकाण्ड-जीवतत्त्व प्रदीपिका टीका, पृ. ६१४-६१५।

पुणो जिणजिणालयगुरवाणं संथवं काऊण जं भूमीए बइसणं तं तदियमोणदं। एवं एक्केक्कम्हि किरियाकम्मे कीरमाणे तिण्णि चेव ओणमणाणि होंति । सव्वकिरियाकम्मं चदुसिरं होदि। तं जहा-सामाइयस्स आदीए जं जिणिंदं पडि सीसणमणं तमेगं सिरं । तस्सेव अवसाणे जं सीसणमणं तं विदियं सीसं। थोस्सामिदंडयस्स आदीए जं सीसणमणं तं तदियं सिरं। तस्सेव अवसाणे जं णमणं तं चउत्थं सिरं । एवमेगं किरियाकम्मं चदुसिरं होदि। ण अण्णत्थ णवणपडिसेहो एदेण कदो, अण्णत्थणवणणियमस्स पडिसेहाकरणादो । अधवा सव्वं पि किरियाकम्मं चदुसिरं चदुप्पहाणं होदि ; अरहंतसिद्धसाहुधम्मे चेव पहाणभूदे कादूण सव्वकिरियाकम्माणं पउत्ति-दंसणादो। सामाइयथोस्सामिदंडयाणं आदीए अवसाणे च मणवयणकायाणं विसुद्धिपरावत्तणवारा बारम हवंति। तेण एगं किरियाकम्मं बारसावत्तमिदि भणिदं । एदं सव्वं पि किरियाकम्मं णाम।[१]

अब क्रिया कर्म का अधिकार है ।।२७।।

इसके अर्थ का खुलासा अगले सूत्र में करते हैं—

आत्माधीन होना, प्रदक्षिणा करना, तीन बार करना, तीन बार अवनति, चार बार सिर नवाना और बारह आवर्त, यह सब क्रियाकर्म है ।।२८।।

आत्माधीन होना आदि के भेद से वह क्रियाकर्म छह प्रकार का है। उनमें से क्रियाकर्म करते समय आत्माधीन होना अर्थात् परवश न होना आत्माधीन होना कहलाता है।

शंका—पराधीनभाव से क्रियाकर्म क्यों नहीं किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकार क्रियाकर्म करने वाले के कर्मों का क्षय नहीं होता और जिनेंद्रदेव आदि की आसादना होने से कर्मों का बन्ध होता है।

वंदना करते समय गुरु, जिन और जिनगृह की प्रदक्षिणा करके नमस्कार करना प्रदक्षिणा है। प्रदक्षिणा और नमस्कार आदि क्रियाओं का तीन बार करना त्रिःकृत्वा है। अथवा एक ही दिन में जिन, गुरु और ऋषियों की वदंना तीन बार की जाती है, इसलिये इसका नाम त्रिःकृत्वा है।

शंका—तीनों ही संध्याकालों में वंदना की जाती है, अन्य समय में क्यों नहीं की जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य समय में भी वंदना के प्रतिषेध का कोई नियम नहीं है।

तीनों सन्ध्या कालों में वंदना के नियम का कथन करने के लियें 'त्रिःकृत्वा' ऐसा कहा है।

१. षट्खण्डागम, धवला टीका सहित पु. १३, पृ. ८८ से ९० तक।

'ओणद' का अर्थ अवनमन अर्थात् भूमि में बैठना है। वह तीन बार किया जाता है। इसलिये तीन बार अवनमन करना कहा है। यथा- शुद्धमन, धौतपाद और जिनेंद्र के दर्शन से उत्पन्न हुये हर्ष से पुलकित वदन होकर जो जिनदेव के आगे बैठना, यह प्रथम अवनति है। तथा जो उठकर जिनेंद्र आदि के सामने विज्ञप्ति कर बैठना, यह दूसरी अवनति है। फिर उठकर सामायिक दण्डक के द्वारा आत्मशुद्धि करके, कषायसहित देह का उत्सर्ग (कायोत्सर्ग) करके, जिनदेव के अनन्त गुणों का ध्यान करके, चौबीस तीर्थंकरों की वंदना करके फिर जिन, जिनालय और गुरु की स्तुति करके जो भूमि में बैठना, वह तीसरी अवनति है। इस प्रकार एक-एक क्रियाकर्म करते समय तीन ही अवनति होती हैं।

सब क्रियाकर्म चतु:शिर होता है। यथा — सामायिक के आदि में जो जिनेंद्रदेव को सिर नवाना वह एक सिर है। उसी के अन्त में जो सिर नवाना वह दूसरा सिर है। 'थोस्सामि' दण्डक के आदि में जो सिर नवाना वह तीसरा सिर है। तथा उसी के अन्त में जो नमस्कार करना वह चौथा सिर है। इस प्रकार एक क्रियाकर्म चतु:शिर होता है। इससे अन्यत्र नमनका प्रतिषेध नहीं किया गया है, क्योंकि शास्त्र में अन्यत्र नमन करने के नियम का कोई प्रतिषेध नहीं है। अथवा सभी क्रियाकर्म चतु:शिर अर्थात् चतु:प्रधान होता है, क्योंकि अरिहंत, सिद्ध, साधु, और धर्म को प्रधान करके सब क्रियाकर्मों की प्रवृत्ति देखी जाती है। सामायिक और थोस्सामि दण्डक के आदि और अन्त में मन , वचन और काय की विशुद्धि के परावर्तन बारह बार होते हैं, इसलिये एक क्रियाकर्म बारह आवर्त से युक्त कहा है। यह सब ही क्रियाकर्म है।

मूलाचार में कहा है —

दोणदं तु जधाजादं बारसावत्तमेव य।
चदुस्सिरं तिसुद्धं च किदियम्मं पउंजदे ।।६०३।।[1]

गाथार्थ — **जातरूप सदृश (मुनि[2]) दो अवनति, बारह आवर्त, चार शिरोनति और तीन शुद्धि सहित कृतिकर्म का प्रयोग करें।।६०३।।**

आचारवृत्ति टीका —

दोणदं-द्वे अवनती पंचनमस्कारादावेकावनतिर्भूमिसंस्पर्शस्तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ द्वितीयाऽवनतिः शरीरनमनं द्वे अवनती **जहाजादं**-यथाजातं जातरूपसदृशं क्रोधमान-मायासंगादिरहितं । **बारसावत्तमेव य** द्वादशावर्त्ता एवं च पंचनमस्कारोच्चारणादौ मनोवचनकायानां संयमनानि शुभयोगवृत्तयस्त्रय आवर्त्तास्तथा पंचनमस्कारसमाप्तौ

१. मूलाचार पृ. ४४२ से ४४४ तक। २. यहाँ मूलाचार में मुनियों का प्रकरण है।

मनोवचनकायानां शुभवृत्तयस्त्रीण्यन्यान्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवादौ मनोवचनकायाः शुभवृत्तयस्त्रीण्यपराण्यावर्त्तनानि तथा चतुर्विंशतिस्तवसमाप्तौ शुभमनोवचनकायवृत्तय-स्त्रीण्यावर्त्तनान्येवं द्वादशधा मनोवचनकायवृत्तयो द्वादशावर्त्ता भवति, अथवा चतसृषु दिक्षु चत्वारः प्रणामा एकस्मिन् भ्रमणे एवं त्रिषु भ्रमणेषु द्वादश भवंति, **चदुस्सिरं** चत्वारि शिरांसि पंचनमस्कारस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणं तथा चतुर्विंशति-स्तवस्यादावंते च करमुकुलांकितशिरःकरणमेवं चत्वारि शिरांसि भवंति, **त्रिशुद्धं** मनोवचनकायशुद्धं क्रियाकर्म प्रयुंक्ते करोति । द्वे अवनती यस्मिन् तत् द्व्यवनति क्रियाकर्म द्वादशावर्त्ताः यस्मिंस्तत् द्वादशावर्त्तं, मनोवचनकायशुद्ध्या चत्वारि शिरांसि यस्मिन् तत् चतुःशिरः क्रियाकर्मैवं विशिष्टं यथाजातं क्रियाकर्म प्रयुंजीतेति।।६०३।।

आचारवृत्ति (हिन्दी) — दो अवनति — पंच नमस्कार के आदि में एक बार अवनति अर्थात् भूमि स्पर्शनात्मक नमस्कार करना तथा चतुर्विंशति स्तव के आदि में दूसरी बार अवनति — शरीर का नमाना अर्थात् भूमिस्पर्शनात्मक नमस्कार करना ये दो अवनति हैं। यथाजात — जातरूप सदृश क्रोध,मान,माया और संग — परिग्रह या लोभ आदि रहित कृतिकर्म को मुनि करते हैं। द्वादश आवर्त — पंच नमस्कार के उच्चारण के आदि में मन वचन काय के संयमनरूप शुभयोगों की प्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त, पंचनमस्कार की समाप्ति में मनवचनकाय की शुभप्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त, तथा चतुर्विंशति स्तव की आदि में मन वचन काय की शुभप्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त एवं चतुर्विंशति स्तव की समाप्ति में शुभ मन वचन काय की प्रवृत्ति होना ये तीन आवर्त — ऐसे मन वचन काय की शुभप्रवृत्तिरूप बारह आवर्त होते हैं।

चतु:शिर — पंचनमस्कार के आदि और अन्त में कर मुकुलित करके अंजलि जोड़कर माथे से लगाना तथा चतुर्विंशति स्तव के आदि और अन्त में मुकुलित करके माथे से लगाना ऐसे चार शिर — शिरोनति होती हैं।

इस तरह से एक कृतिकर्म में दो अवनति, बारह आवर्त और चार शिरोनमन होते हैं। मन वचन काय की शुद्धिपूर्वक यथाजात मुनि इस विधानयुक्त कृतिकर्म का प्रयोग करें।

आचारसार[1] ग्रंथ में कहा है —

क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहम्।
विज्ञाप्येति समुत्थाय गुरुस्तवनपूर्वकम्।।३५।।
कृत्वा करसरोजातमुकुलालंकृतं निजम् ।
भाललीलासरः कुर्यात् त्र्यावर्त्तां शिरसो नतिं।।३६।।

१. आचारसार पृ. १९१-१९२।

अन्वयार्थ—(**अस्यां**) इस (**क्रियायां**) क्रिया में (**अस्याः**) इस (**भक्तेः**) भक्ति का (**व्यत्सर्गं**) कायोत्सर्ग (**अहं**) मैं (**करोमि**) करता हूं (**इति**) इस प्रकार (**विज्ञाय**) विज्ञापन करके (**समुत्थाय**) उठकर (**गुरुस्तवनपूर्वकम्**) गुरु स्तवन पूर्वक (**निजं**) अपने (**करसरोजातमुकुलालंकृतं**) हस्त कमल की कुड्मलाकृति को (**भाललीलासरः**) ललाट पर (**कृत्वा**) करके (**त्र्यावर्त्तां**) तीन आवर्त और (**शिरसः**) मस्तक से (**नतिं**) नमस्कार को (**कुर्यात्**) करे ।

भावार्थ—मैं इस क्रिया में इस भक्ति का कायोत्सर्ग करता हूं। जैसे—पौर्वाह्निक देववंदना में "चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहं" इस प्रकार विज्ञापन करे । तदनंतर उठकर "णमो अरिहंताणं" इत्यादि पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर अपने कर कमल की अंजुलि को मस्तक पर रखकर तीन आवर्त सहित नमस्कार करे ।।३५-३६।।

आद्यस्य दंडकस्यादौ मंगलादेरयं क्रमः ।
तदन्तेऽप्यंगव्युत्सर्गः कार्योतस्तदनन्तरम् ।।३७।।
कुर्यात्तथैव ''थोस्सामी''त्याद्यार्याद्यंतयोरपि ।
इत्यस्मिन् द्वादशावर्त्ताः शिरोनतिचतुष्टयम् ।।३८।।युग्मं।।

अन्वयार्थ—(**आद्यस्य**) आदि (**दंडकस्य**) दंडक के (**आदौ**) आदि में (**मंगलादेः**) मंगलादि का (**अयं**) यह (**क्रमः**) क्रम है । (**तदन्ते**) चत्तारिमंगलं आदि दंडक के अन्त में (**अपि**) भी (**अंगव्युत्सर्गः**) कायोत्सर्ग (**कार्यः**) करना चाहिये। (**अतः**) इसलिए (**तदनन्तरं**) इसके बाद (**तथैव**) उसी प्रकार (**थोस्सामि**) थोस्सामि (**इत्यादि**) इत्यादि पाठ (**कुर्यात्**) करे (**इति**) इस प्रकार (**अस्मिन्**) कायोत्सर्ग में (**आर्याद्यन्तयोः**) आर्या छंद—थोस्सामि स्तवन के आदि और अन्त में (**अपि**) भी (**द्वादशावर्त्ताः**) बारह आवर्त (**शिरोनतिचतुष्टयं**) चार शिरोनति (**कुर्यात्**) करना चाहिये ।

भावार्थ—एक भक्ति के दंडक की आदि में मंगलादि का यही क्रम है अर्थात् भक्तिपूर्वक क्रिया और भक्ति का विज्ञापन करे । एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके दंडक पढ़े । दंडक के बाद एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करके कायोत्सर्ग करे । तदनन्तर एक शिरोनति और तीन आवर्त्त करे । इस प्रकार एक कायोत्सर्ग में चार शिरोनति और बारह आवर्त्त करना चाहिये ।।३७-३८।।

ग्रंथारंभे समाप्तौ च स्वाध्याये स्तवनादिषु ।
सप्तविंशतिरुच्छ्वासा व्युत्सर्गे दुर्मनस्यपि।।३९।।

अन्वयार्थ—(**स्वाध्याये**) स्वाध्याय में (**च**) और (**स्तवनादिषु**) स्तवन

आदि में (**दुर्मनसि अपि**) विकृति परिणाम के होने पर भी (**व्युत्सर्गे**) कायोत्सर्ग में (**सप्तविंशतिः**) सत्ताईस (**उच्छ्वासः**) उच्छ्वास हैं।

भावार्थ—ग्रन्थ के आरम्भ, समाप्ति, स्वाध्याय, पंचपरमेष्ठी की वन्दना और दुर्भावना के कायोत्सर्ग में सत्ताईस श्वासोच्छ्वास में कायोत्सर्ग करना चाहिए ।।३९।।

चारित्रसार में कहा है—

क्रियां कुर्वाणो वीर्योपगूहनमकृत्वा शक्त्यनुरूपतः स्थितेनाशक्तः सन् पर्यंकासनेन वा त्रिकरणशुद्ध्या संपुटीकृतकरः क्रियाविज्ञापनपूर्वकं सामायिक-दंडकमुच्चारयेत् , तदावर्त्तत्रयं यथाजातं शिरोन्नमनमेकं भवति, अनेन प्रकारेण सामायिकदंडकसमाप्तावपि प्रवर्त्य यथोक्तकालं जिनगुणानुस्मरणसहितं कायव्युत्सर्गं कृत्वा द्वितीयदण्डकस्यादावन्ते च तथैव प्रवर्त्तनं, एवमेकैकस्य कायोत्सर्गस्य द्वादशावर्त्ताश्चत्वारि शिरोवनमनानि भवन्ति । अथवैकस्मिन् प्रदक्षिणीकरणे चैत्यादीनामभिमुखीभूतस्याऽऽवर्त्तत्रयैकावनमने कृते चतसृष्वपि दिक्षु द्वादशावर्त्ताश्चतस्त्रः शिरोवनतयो भवन्ति । आवर्त्तानां शिरःप्रणतीनामुक्तप्रमाणा-दाधिक्यमिति न दोषाय। उक्तं च —

दुउणदं जहाजादं वारसावत्तमेव च ।
चदुस्सिरं तिसुद्धिं च किदियम्मं पउंजदे।।[१]

क्रिया करते समय अपनी शक्ति को कभी नहीं छिपाना चाहिये ,अपनी शक्ति के अनुसार खड़े होकर कायोत्सर्ग करना चाहिये । यदि खड़े होने की सामर्थ्य न हो तो पर्यंकासन से बैठकर करना चाहिये । मन, वचन,काय तीनों की शुद्धतापूर्वक दोनों हाथों का संपुट बांधकर करने योग्य क्रियाओं की प्रतिज्ञा कर सामायिक दंडक के (सामायिक पाठ का) उच्चारण करना चाहिये । उस समय तीन आवर्त, यथाजात अवस्था धारण कर एक शिरोनति करना चाहिये । इसी प्रकार सामायिक दंडक के समाप्त होने पर भी सब क्रियाएं करनी चाहिये । इस तरह शास्त्रों में लिखे हुए समय तक भगवान् जिनेन्द्र देव के गुणों का स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना चाहिये । इसी प्रकार दूसरे दंडक के प्रारंभ और अंत में करना चाहिये। इस प्रकार एक-एक कायोत्सर्ग के बारह आवर्त और चार शिरोनति होती हैं अथवा एक-एक प्रदक्षिणा में (दिशा बदलते समय) उस दिशा संबंधी चैत्य-चैत्यालय के सन्मुख तीन आवर्त और एक शिरोनति करनी चाहिये । इस प्रकार चारों दिशाओं में बारह आवर्त और चार शिरोनति करनी चाहिये । आवर्त और शिरोनति का जो प्रमाण ऊपर लिखा है उससे अधिक करना कुछ दोष नहीं गिना जाता ।

---

१. चारित्रसार, पृ. १४३ से १४४।

कहा भी है—दुउणदं इत्यादि ।

अर्थात्—दो आसनों से यथाजात अवस्था धारण कर बारह आवर्त, चार शिरोनति और मन, वचन, काय की शुद्धिपूर्वक काल का नियम कर प्रभु की वंदना करनी चाहिये।

रत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है—

अधुना सामायिकगुणसम्पन्नत्वं श्रावकस्य प्ररूपयन्नाह—

चतुरावर्त्तत्रितयश्चतुःप्रणामः स्थितो यथाजातः ।

सामयिको द्विनिषद्यस्त्रियोगशुद्धस्त्रिसन्ध्यमभिवन्दी ।।१८।।[1]

सामयिकः समयेन प्राक्प्रतिपादितप्रकारेण चरतीति सामायिकगुणोपेतः । किंविशिष्टः? **चतुरावर्तत्रितयः** चतुरो वारानावर्तत्रितयं यस्य । एकैकस्य हि कायोत्सर्गस्य विधाने 'णमो अरहंताणस्य थोसामे'-श्चाद्यन्तयोः प्रत्येकमावर्तत्रितयमिति एकैकस्य हि कायोत्सर्गविधाने चत्वार आवर्ता तथा तदाद्यन्तयोरेकैकप्रणामकरणाच्चतुः प्रणामः स्थित ऊर्ध्वंकायोत्सर्गोपेतः । यथाजातो बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहचिन्ताव्यावृत्तः। **द्विनिषद्यो** द्वे निषद्ये उपवेशने यस्य । देववन्दनां कुर्वता हि प्रारम्भे समाप्तौ चोपविश्य प्रणामः कर्तव्यः । त्रियोगशुद्धः त्रयो योगा मनोवाक्कायव्यापाराः शुद्धा सावद्यव्यापाररहिता यस्य । **अभिवन्दी** अभिवन्दत इत्येवंशीलः । कथं ? त्रिसंध्यं ।।१८।।

अब वह श्रावक सामायिक गुण से संपन्न होता है, यह कहते हैं—

चतुरावर्तेति—(**यः**) जो (**चतुरावर्तत्रितयः**) चार बार तीन तीन आवर्त करता है, (**चतुःप्रणामः**) चार प्रणाम करता है, (**स्थितः**) कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, (**यथाजातः**) बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, (**द्विनिषद्यः**) दो बार बैठकर नमस्कार करता है (**त्रियोगशुद्धः**) तीनों योगों को शुद्ध रखता है और (**त्रिसन्ध्यं**) तीनों सन्ध्याओं में (**अभिवन्दी**) वन्दना करता है (**सः**) वह (**सामायिकः**) सामायिक प्रतिमाधारी है।

टीकार्थ—इस श्लोक में सामायिक प्रतिमा का लक्षण बतलाते हुए उसकी विधि का भी निर्देश किया गया है। सामायिक करने वाला पुरुष एक-एक कायोत्सर्ग के बाद चार बार तीन-तीन आवर्त करता है, अर्थात् प्रत्येक दिशा में 'णमो अरहंताणं' इस आद्य सामायिक दण्डक और 'थोस्सामिहं' इस अन्तिम स्तव दण्डक के तीन-तीन आवर्त और एक-एक प्रणाम इस तरह बारह आवर्त और चार प्रणाम करता है। श्रावक इन आवर्तादिक की क्रियाओं को खडे. होकर करता है, सामायिक की अवधि के भीतर

१. रत्नकरण्डश्रावकाचार (समन्तभद्र-भारती) पृ. २४१-२४२।

यथाजात—नग्नमुद्राधारी के समान बाह्याभ्यन्तर परिग्रह की चिन्ता से दूर रहता है। 'देववन्दना' करने वाले को प्रारम्भ में और समाप्ति में बैठकर प्रणाम करना चाहिये, इस विधि के अनुसार दो बार बैठकर प्रणाम करता है अर्थात् सामायिक प्रारम्भ करने के लिये प्रथम बार कायोत्सर्ग कर तीन आवर्त करता है, उसके बाद बैठकर पृथ्वी में शिर झुकाता हुआ नमस्कार करता है और सामायिक के बाद कायोत्सर्ग करता है, उसके बाद भी बैठकर पृथ्वी में शिर झुकाता हुआ नमस्कार करता है। तीनों योगों को शुद्ध रखता है अर्थात् वह सावद्य व्यापार का त्याग करता है और तीनों संध्याओं में वन्दना करता है।

अनगारधर्मामृत में कहा है—

सामायिकादित्रयस्य व्यवहारानुसारेण प्रयोगविधिं दर्शयति—

सामायिकं णमो अरहंताणमिति प्रभृत्यथ स्तवनम् ।

थोसामीत्यादि जयति भगवानित्यादिवन्दनां युंज्यात् ।।५६।।[1]

युंज्यात् संयतो देशसंयतो वा प्रयोजयेत् । किं तत् ? **सामायिकं** सामायिकदण्डकम्। कीदृशम् ? **णमो अरहंताणं इति प्रभृति** । तथानन्तरं युञ्ज्यात् । किं तत् ? स्तवनं चतुर्विंशतिस्तवनं स्तवदण्डकम । कीदृशम् ? **थोसामि इत्यादि**। अथ अनतरं युञ्ज्यात् । काम् ? **जयति भगवानित्यादिवन्दनाम्**। अत्रैक आदिशब्दो लुप्तनिर्दिष्टो द्रष्टव्यः । तेन अर्हत्सिद्धादिवन्दना गृह्यते ।

संयमी साधुओं को तथा देशसंयमी श्रावकों को भी णमो अरहंताणं आदि सामायिक दण्डक में बताये हुये पाठ के अनुसार सामायिक, और थोस्सामि इत्यादि पाठ के अनुसार चतुर्विंशतिस्तव, तथा ''जयति भगवान्'' इत्यादि उल्लेख के अनुसार वन्दना करनी चाहिये।

इस श्लोक में एक आदि शब्द का लुप्त निर्देश है। अत एव इस वन्दना के प्रकरण में अरहंत वन्दना, सिद्ध वन्दना आदि का भी संग्रह समझ लेना चाहिये।

विशेष—इस प्रकार श्रावक और श्राविकाएँ, देवदर्शन, अभिषेक पूजन व सामायिक में पूर्वकथित 'कृतिकर्म विधि' का प्रयोग करें। क्योंकि अनगारधर्मामृत में ''युंज्यात् संयतो देशसंयतो वा'' आया है। इस कथन से श्रावकों के लिए भी करना कहा है।

मुनियों के कृतिकर्म

षट्खण्डागम, कसायपाहुड़, मूलाचार, आचारसार आदि महान ग्रंथों में आचार्यदेव श्री पुष्पदंत-भूतबलिसूरि, श्री कुंदकुंददेव मूलाचार के टीकाकार सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री वसुनंदि आचार्य, आचारसार ग्रंथ के कर्ता सिद्धान्तचक्रवर्ती श्री वीरनन्दि आचार्य आदि

१. अनगारधर्मामृत, पृ. ५७७।

अनेक आचार्यों ने—यह कृतिकर्म विधि बतलाई है तथा चारित्रसार ग्रंथ के कर्ता श्री चामुण्डराय श्रावक व अनगारधर्मामृत के कर्ता श्री आशाधर श्रावक जैसे विद्वानों ने भी पूर्वाचार्यों के अनुसार यथास्थान पूर्वाचार्यों के ग्रंथों के प्रमाण उद्धृत कर-कर इन क्रियाओं की पुष्टि की है।

मुख्यरूप से ये कृतिकर्म मुनियों के अहोरात्र—दिनरात के अट्ठाईस माने हैं। उसी में त्रिकालदेववंदना में चैत्यभक्ति और पंचगुरुभक्ति के दो-दो ऐसे २×३=६ कृतिकर्म देववंदना अर्थात् सामायिक के माने हैं। दैवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण के चार-चार व चार समय के स्वाध्याय के तीन-तीन तथा रात्रियोग प्रतिष्ठापन व निष्ठापन के दो ऐसे ६+८+१२+२=२८ कृतिकर्म कहे हैं।[१]

इनका विस्तृत वर्णन मुनिचर्या नाम की पुस्तक में प्रयोगविधि में दिया गया है।

प्राचीन प्रकाशित 'क्रियाकलाप' ग्रंथ में भी विस्तृत विवेचन है तथा मेरे द्वारा लिखित 'दिगम्बर मुनि' व 'आर्यिका' पुस्तकों में स्पष्टीकरण है।

यहाँ मात्र संक्षेप में सप्रमाण 'कृतिकर्म विधि' का ही कथन है। यह कृतिकर्म विधि सभी श्रावक-श्राविका व बालक-बालिकाएँ सीखें तथा इस विधि से बीच-बीच में उठकर खड़े होना, गवासन से बैठना, आलोचना पढ़ना आदि क्रियाएँ करेंगे, तो महान पुण्य संचय के साथ-साथ स्वयं में महान आल्हाद—आनंद का अनुभव होगा तथा देखने वालों को भी बहुत ही अच्छा लगेगा। भगवान के प्रति विशेष विनय व भक्ति दिखेगी अतः आप सभी इस विधि को करना प्रारंभ करें, यही मेरा प्रयास है।

१. मूलाचार गाथा ६०२, अनगारधर्मामृत आदि।

चत्तारिमंगल पाठ

प्राचीन पाठ—

चत्तारि मंगलं—अरिहंत मंगलं, सिद्ध मंगलं, साहु मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंत लोगुत्तमा, सिद्ध लोगुत्तमा, साहु लोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंत सरणं पव्वज्जामि, सिद्ध सरणं पव्वज्जामि, साहु सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि।

नया पाठ—

चत्तारि मंगलं—अरहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

वर्तमान में विभक्ति लगाकर 'चत्तारिमंगल पाठ'—नया पाठ पढ़ा जा रहा है। जो कि विचारणीय है। यह पाठ सन् १९७४ के बाद में अपनी दिगम्बर जैन परम्परा में आया है। देखें प्रमाण—

'ज्ञानार्णव' जैसे प्राचीन ग्रंथ में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही है। यह विक्रम सम्वत् १९६३ से लेकर कई संस्करणों में वि.सं. २०५४ तक में प्रकाशित है। पृ. ३०९ पर यही प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठातिलक जो कि वीर सं. २४५१ में सोलापुर से प्रकाशित है, उसमें पृष्ठ ४० पर यही प्राचीन पाठ है। आचार्य श्री वसुविंदु-अपरनाम जयसेनाचार्य द्वारा रचित 'प्रतिष्ठापाठ' जो कि वीर सं. २४५२ में प्रकाशित है। उसमें पृ. ८१ पर प्राचीन पाठ ही है। हस्तलिखित 'श्री वसुनंदिप्रतिष्ठापाठ संग्रह' में भी प्राचीन पाठ है। प्रतिष्ठासारोद्धार जो कि वीर सं. २४४३ में छपा है, उसमें भी यही पाठ है। 'क्रियाकलाप' जो कि वीर सं. २४६२ में छपा है, उसमें भी तथा जो 'सामायिकभाष्य' श्री प्रभाचंद्राचार्य द्वारा 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी अरहंत मंगलं-अरहंत लोगुत्तमा,....... अरहंत सरणं पव्वज्जामि, यही पाठ है पुनः यह संशोधित पाठ क्यों पढ़ा जाता है। क्या ये पूर्व के आचार्य व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? इन आचार्यों की कृति में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कहाँ तक उचित है ?

मैंने पं. सुमेरचंद्र दिवाकर, पं. पन्नालाल साहित्याचार्य, प्रो. मोतीलाल कोठारी, फलटन आदि अनेक विद्वानों से चर्चा की थी। ये विद्वान भी प्राचीन पाठ के समर्थक थे। एक बार पं. पन्नालाल जी सोनी ब्यावर वालों ने कहा था कि जितने भी प्राचीन यंत्र हैं व प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथ हैं सभी में बिना विभक्ति का प्राचीन पाठ ही मिला है अत: ये ही प्रमाणीक हैं। यह विभक्ति सहित अर्वाचीन पाठ श्वेताम्बर परम्परा से आया है ऐसा पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य ने कहा था। जो भी हो, हमें और आपको प्राचीन पाठ ही पढ़ना चाहिए। सभी पुस्तकों में प्राचीन पाठ ही छपाना चाहिए व मानना चाहिए। नया परिवर्द्धित पाठ नहीं पढ़ना चाहिए।

करोम्यहम्—कई एक मुनियों की 'श्रमणचर्या', 'विमलभक्ति संग्रह' आदि पुस्तकों में प्रतिज्ञावाक्य में 'कुर्वेऽहम्' पाठ छपा हुआ है। यह पाठ कब और क्यों परिवर्तित हुआ ? चिंतन का विषय है।

प्राचीन आचार्यों के ग्रंथ 'आचारसार' में देखिए—

''**क्रियायामस्यां व्युत्सर्गं भक्तेरस्याः करोम्यहम्।**

विज्ञाप्येति.....[१]''

चारित्रसार में—'**चैत्यभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य**'

''**पंचगुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोमीति विज्ञाप्य**[२]''

इन सभी ग्रंथों में तथा क्रियाकलाप ग्रंथ जो कि वी. सं. २४६२ में छपा है उसमें सर्वत्र 'करोमि' 'करोम्यहम्' यही पाठ है। सामायिकभाष्य जो कि 'देववंदना' की संस्कृत टीका है, उसमें भी सर्वत्र 'करोम्यहम्' यही पाठ है। क्या ये आचार्य संस्कृत व्याकरण के ज्ञाता नहीं थे ? ये तो व्याकरण, छंद, अलंकार व जैन आगम के महान् से भी महान् ज्ञाता थे। उनकी कृतियों में परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन कथमपि उचित नहीं है।

एक विद्वान से चर्चा हुई, तो उन्होंने कहा—

माताजी ! 'करोमि' क्रिया 'परस्मैपदी' है ये पर के लिए है। हमें स्वयं के लिए 'आत्मनेपदी' क्रिया का प्रयोग करना चाहिए। तो भव्यात्माओं ? चिंतन करें।

"अहं गच्छामि, अहं अद्मि, अहं पश्यामि, अहं जानामि, अहं करोमि।" ये सब परस्मैपदी क्रियाएँ हैं। क्या ये 'मैं जाता हूँ, मैं खाता हूँ, मैं देखता हूँ, मैं जानता हूँ, मैं करता हूँ।" इस प्रकार मेरे लिए नहीं होगी ? पर के जाने, खाने, देखने, जानने व करने के लिए होंगी? यह एक हास्यास्पद ही कथन है। अत: यह संशोधन तर्क संगत भी नहीं है।

---

१. आचारसार, पृ. १९१। २. चारित्रसार, पृ. १४७।

तात्पर्य यह है कि—'करोम्यहम्' के स्थान में 'कुर्वेऽहम्' पाठ आगम से व तर्क से भी संगत नहीं है। पूर्व के टीकाकारों, आचार्यों ने कहीं पर भी आचार्यों की कृति में परिवर्तन नहीं किया है। अत: हमें और आपको भी मुनियों, आर्यिकाओं, श्रावक व श्राविकाओं की इन क्रियाओं के किसी भी पद या वाक्य में परिवर्तन, परिवर्धन या संशोधन नहीं करना चाहिए।

इसे हम ऐसा भी नहीं कह सकते हैं कि—हस्तलिखित प्राचीन ग्रंथों की प्रतिलिपि करते समय लेखक से कहीं भूल हो गई होगी। चूँकि मूल श्लोकों में व टीका की पंक्तियों में सर्वत्र जो पाठ पाया जा रहा है, वही हमारे व आपके लिए प्रमाण है।

अत: हमें व आपको सर्वत्र भक्तिपाठ की क्रिया के प्रारंभ में व देववंदना, प्रतिक्रमण आदि क्रियाओं में 'करोम्यहम्' पाठ ही पढ़ना चाहिए।

यहाँ पर मैंने कृतिकर्म विधि के शास्त्रीय प्रमाण, कृतिकर्म की प्रयोग विधि आदि देकर चत्तारिमंगल का प्राचीन पाठ एवं संस्कृत व्याकरण के अनुसार "करोम्यहं" क्रिया के प्राचीन उद्धरण देकर यह बताया कि हमें पूर्वाचार्यों की प्राचीन कृतियों में किसी तरह का पाठ परिवर्तन नहीं करना चाहिए। क्योंकि हम सब अल्पज्ञ हैं और अपनी अल्पबुद्धि को मात्र स्वाध्याय-अध्ययन में ही लगाकर उसे वृद्धिंगत करने का पुरुषार्थ करें यही मानव जीवन की सार्थकता है।